अध्याय पाँचवाँ

॥श्री गणेशाय नम:॥ श्री सरस्वत्यै नम:॥ श्री सिद्धारूढाय नम:॥

"जो वेदांत के ज्ञान में स्वयं का चित लीन कर देता है, जो शांति से स्वरूप ज्ञान (आत्मज्ञान में) में लीन हो जाता है, ऐसा वह श्री सिद्धयोगी दीन तथा ज्ञानप्राप्ति की कामना करने वाले भक्तों को तारने हेतु तीर्थ करने चले।"
जिसे सभी प्राणीयों का "जीवात्मा" कहते है, जिसकी चेतना से यह अखिल ब्रह्मांड व्याप्त है, जिसे सभी इंद्रिय नही समझ सकती परंतु जिस के कारण इंद्रियों को ज्ञान होता है, जो सदा ही अंतस (हृदय) का गवाह होता है, जो सभी वृत्तियों का पूर्णरूप से त्याग करके समाधि में स्वयं प्रकाशित होता है, जिसे "स्वरूप" कहते है, वही जागृति की अवस्था में इस जगत के रूप से भासमान होता है और स्वयं अव्दैत तथा ज्ञान का रूप होने के बावजूद दृश्यमान जगत के आडंबर को लेकर खेल खेलता है, ऐसे यह सतगुरुजी, जो केवल ब्रह्मरूप है, वह तमाम मुमुक्षू जनों का उद्धार करने के लिए इस पृथ्वीपर अवतरीत होते हैं। पिछले अध्याय में आपने सुना की सतगुरुजी ने सिद्ध का अधिकार देखकर उसका "सिद्धारूढ" यह नामकरण किया। अब आगे की कथा सुनिए। गजदंड गुरु महाराज सिद्ध से बोले, "सिद्ध, अब तुम्हे पूर्णरूप से ज्ञानप्राप्ति हुई है। यह ज्ञान सार्थक हो, इसलिए अब तुम अन्य मुमुक्षू जनों को प्रबोधित करो। इस कार्य के लिए तुम तीर्थयात्रा पर निकल पडो। मार्ग में मिले साधु-सज्जनों के साथ आत्मानात्म (आत्मा न आत्मा) विषयपर चर्चा करके वेदांत का ज्ञान अच्छी तरह से तुम में सान लो।" सतगुरुजी के ये बोल सुनकर सिद्ध ने कहा, "सतगुरु महाराजजी आपकी आज्ञा का मैं पूर्णरूप से पालन करूँगा।" उसपर सतगुरु महाराजजी की आज्ञा लेकर वह तीर्थयात्रा करने निकल पडा।

उसके उपरांत सिद्धनाथ किष्किंधा गए और वहाँ उन्होने विरुपाक्ष के दर्शन किए। उसके बाद हेमकूट पहाड चढने के पश्चात उन्हे "करस्थ नागलिंग" की एक गुफा दिखाई पडी। उस गुफा को देखते ही वे हर्षित हो उठे। समाधि स्थिति प्राप्त करने हेतु वह वही एकांतवास में बैठे रहे। क्रमश: एक एक अंग को साधते हुए उन्होने सप्तांग योग साधना की और बाद में वे पंपाक्षेत्र जाने के

लिए निकल पडे। पंपाक्षेत्र में उन्होंने विरुपाक्ष के दर्शन किए और वहाँ स्थित वसिष्ठाश्रम में वे तीन दिन स्वानंद में निमग्न हो गए। वहाँ से वह गंधमादन पहाड पर गए और वहाँ से "स्फटिक शिला" (काँच का पत्थर) देखने की कामना करते हुए ऋषियों के आश्रम गए। वह जगह तपोभूमि है या नही यह परखने के लिए वे वहाँ नौ दिन आहार वर्जित किया, परंतु उन्हें उस अवधि में भूख नही लगी। उसी प्रकार उन्हे संदिग्धता या अन्य प्रतिकूल भावनाएँ, मन की बेचैनी तथा चंचलता ऐसे योग साधना में बाधा डालने वाले तमाम भाव नष्ट होने के कारण, मन की सभी वृत्तियाँ एकसूत्रता से ब्रह्मैक्य होने का अनुभव हुआ। ये सभी लक्षण वह जगह तपोभूमि है यह साबित करती है यह जानकर वे वहाँ से आगे निकले। वहाँ से वे पंपा सरोवर आए और सरोवर में स्नान करने के पश्चात श्रीरामचंद्रजी को प्रणाम करके चक्रतीर्थ वाली भंडार देखकर वे चिंतामणी आश्रम पहुँचे। वहाँ चंद सज्जनों से उनकी मुलाकात हुई, जिनके साथ उन्हों ने बातचीत की। उनमें से एक ने सिद्धनाथजी से पूछा, "आत्मा क्या होती है?" इतने में एक कट्टर (कर्मकाण्डी) ब्राह्मण, जिसे किसी भी धर्मशास्त्र का ज्ञान नही था, उसने सबको कहा, "हम सब लोग अपने शरीर को ही अहंभाव (मैं, मेरा आदि कहने का भाव) प्रदान करते हैं, इसीलिए यह शरीर ही आत्मा है यह समझ लीजिए।" उसपर दूसरे ने उसे पूछा, "आप शरीर को 'जानकार' समझकर उसे अहंभाव प्रदान कर रहे हैं या अज्ञानी और जड़ (जिस में आत्मतत्व या चेतना का अभाव है) शरीर को ही अहंभाव प्रदान कर रहे हैं, यह तो स्पष्ट कीजिए। अगर आप शरीर को 'जानकार' समझते हैं तो आप ही अपना शरीर है, ये कैसे संभव है?" और अगर शरीर जड़ है तो उसे स्नान तथा भोजन की क्या आवश्यकता है?" ये सुनकर वह निरुत्तर हो गया। तब तीसरे ने कहा, "आत्मा यह पूर्णत: ज्ञानरूप होती है इसलिए जड़ शरीर और ज्ञानरूप आत्मा ये दोनों निश्चित रूपसे भिन्न हैं।" उसपर चौथे ने उसे पूछा, "इस ज्ञानरूप तथा देहविरहित आत्मा का आवागमन है या नही, ये जरा स्पष्ट तो कीजिए। अगर आप उसे आवागमन रहित कहते हैं तब उसे नींद, जागृति तथा स्वप्न इन तीनों अवस्थाओं से गुजरना और सुख तथा दुख भोगना कैसे संभव है? अगर आत्मा का आवागमन है तथा वह वायु के समान जड़ है ऐसा कहें तो वायु सुख तथा

दुख दोनों भी नही जानती, परंतु, मन सुख और दुख समझता है, इसलिए मन ही आत्मा है। जिस स्थूल (जड़ या चेतनारहित वस्तु) शरीर को अहंभाव ने ग्रासित किया है, ऐसे शरीर से संबंधित मन का आवागमन है, उसी प्रकार उसे सुख दुख का ज्ञान भी होता है, इसीलिए मन ही आत्मा है।" उन लोगों में एक बौद्ध था, जिसने कहा, "अगर कोई बुद्धिकर्ता नहीं हो तो मनको कौन प्रेरित करेगा? हरएक कार्य का कर्ता यह मनुष्य की बुद्धि ही होती है, इसीलिए बुद्धि ही आत्मा है।" तब भट्टाचार्यजी का एक शिष्य बोला, "नींद के समय, बुद्धि लय हो जाती है, उस समय केवल आनंद (शेष) रहता है, इसीलिए आनंद यही आत्मा है।" यह सुनकर एक शून्यवादी (नास्तिक) ने कहा, "नींद में हमें कुछ भी दिखाई नहीं पडता, इसका अर्थ हुआ की आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं।" ये सब उलटेसीधे वादविवाद सुनकर सिद्धारूढ़ खडे होकर बोले, "अरे शून्यवादी, आत्मा का कोई अस्तित्व नही ऐसा तुम जानकार होते हुए कह रहे हो या अज्ञानवश कह रहे हो, यह हमें बता दें। अरे, आत्मा तो अस्तित्व की खान है ऐसा श्रुतियों में कहा गया है अर्थात आत्मा ही ब्रह्म है।" उसपर एक प्रारब्धवादी ने कहा, "परंतु आत्मज्ञानी मनुष्य भी प्रारब्ध को टाल नहीं सकता, तथा उसके पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार उसे सुख और दुख प्राप्त होते रहते हैं, उसका क्या?" तब सिद्धारूढ़ ने उसे कहा, "मनुष्य को प्राप्त होनेवाले सुख तथा दुख ये विषयों की वस्तुओं पर आधारित हैं अथवा उसके मन की वृत्तियों पर आधारित हैं ऐसा तुम कहोगे परंतु इन दोनों में से पहले मुद्दे के बारे में सोचते ही वह असंभव है, यह हम जान जाते हैं। अगर सुख तथा दुख विषयों की वस्तुओं पर आधारित है ऐसा कहोगे तो एक ही विषयों की वस्तुओं से प्राप्त होने वाले सुख में भिन्न व्यक्ति, उनकी परिस्थिति और समय इनके कारण भेद पाया जाता है। जिस विषय की वस्तु से स्वस्थ (निरोगी) मनुष्य को सुख प्राप्त होता है, उसी वस्तु से रोगी मनुष्य को दुख प्राप्त होता है, इसलिए सुख और दुख विषयक नहीं हैं। अगर सुख तथा दुख मन की वृत्तियों पर आधारित हैं ऐसा कहोगे तो मन के स्वभाव या वृत्तियों का मनपर असर नहीं होता। जिसप्रकार गर्मी अग्नि पर असर नहीं कर सकती, उसी प्रकार सुख तथा दुख आत्मा को बाधित नहीं कर सकते।" उसपर उसने फिर कहा, "जब सुख तथा दुख तो मन के धर्म है, तब

क्यों वो आत्मा को बाधित नहीं कर सकते?" तब सिद्धारूढ़जी ने उत्तर दिया, "आत्मा निद्रा तथा समाधि में रहती है, जहाँ पर मन के लिए जगह और प्रवेश वर्जित है। इसलिए मन के धर्म आत्मज्ञानी मनुष्य को विचलित नहीं कर सकते।" उसपर उस वादी ने कहा, "आपके कहने के अनुसार ज्ञानी मनुष्य के संदर्भ में 'नाभुक्तं क्षीयते कर्म (अर्थ: पूर्णरूप से भुगते बिना कर्म का विनाश नहीं होता।)' यह श्रुतिवचन झूठा साबित होगा। हे ज्ञानी मनुष्य उस के बारे में आपकी क्या राय है?" उसपर सिद्धारूढजी ने कहा, "आपने जो उच्चारण किया हुआ वचन निश्चित रूपसे श्रुतियों में है। परंतु यह वचन अज्ञानी तथा पामर लोगों के मन में कर्म के प्रति भय निर्माण करने हेतु दिया गया है। ज्ञानी मनुष्य के संदर्भ में यह वचन पूर्ण रूप से अप्रमाणित साबित होता है।" सिद्धयतिजी के बोल सुनकर सभी अति आनंदित हुए। उन्होनें मन ही मन कहा की सिद्धारूढ़ स्वामीजी धन्य है।

उस दिन वहाँ रहने के पश्चात दूसरे दिन सिद्धनाथ वहाँ से निकल पडे और जल्द ही वे तिरुपति क्षेत्र पहुँचे, जहाँ उन्होनें श्रीवेंकटेशजी के दर्शन किए। वहाँ से निकल ने के बाद मार्ग में उन्हें अनेक सुखों दुखों का सामना करना पडा, फिर भी डगमगाए बिना, ब्रह्मचिंतन में रत रहते हुए उन्होनें वे सब सह लिये। उन के शरीर पर एक अधूरा वस्त्र, भिक्षा माँगने के लिए हाथों की अँजुली का पात्र और रात निद्रा के समय पृथ्वी यही उनकी शय्या, इस प्रकार वे तीर्थयात्रा कर रहे थे। कुछ लोग उनको पागल समझकर, कंकड पत्थरों से मारकर उन्हे जख्मी करते तो कुछ लोग वे रोगी होने के कारण दुबले हुए होंगे ऐसा समझकर उन्हें पास न आने देते। कुछ लोग कहते, "न जाने कौन सा कुल गोत्र है किस को पता!" और उनका संसर्ग पूर्ण रूप से टालते, तो कुछ लोग उनकी निरपेक्ष वृत्ति देखकर उन्हें ज्ञानी मनुष्य या आध्यात्मिक क्षेत्र का अधिकारी या परिपक्व ब्रह्मज्ञानी समझकर उन्हें भोजन आदि देते। वहाँ से निकलकर सिद्ध शिवकांची गये और वहाँ उन्होंने परशिव की मूर्ति का तथा विष्णूकांची जाकर वहाँ श्रीवरदराज के दर्शन किये।

मार्ग में एक ब्राह्मण ने उन्हें देखा और उसके मन में विचार आया की संभवत: यह जडभरत के समान कोई ब्रह्मज्ञानी होगा। सिद्धारूढ़जी की निरपेक्ष

वृत्ति तथा हँसमुख चेहरा देखकर वह ब्राह्मण उनका हाथ पकडकर उनकी पूजा करने के लिए उन्हें अपने घर ले गया। इस महान व्यक्ति की पूजा करने से उत्तम फलप्राप्ति होगी इस भावना से प्रेरित उसने सिद्धारूढ़जी को आसन पर बिठाकर उनकी षोडशोपचार पूजा की। उसपर उनके सामने हाथ जोडकर उसने प्रार्थना की, "हे स्वामीजी, मैं ने सुना है की ब्रह्मज्ञानी मनुष्य के दर्शन तथा पूजन से तत्काल फलप्राप्ति होती है।" तब सिद्धारूढ़जी ने उसे पूछा, "सच कहो, तुम कौन हो?" उसने कहा, "यह जो दिखाई देनेवाला मेरा शरीर जो है, निश्चित रूप से वह शरीर ही मैं स्वयं हूँ।" सतगुरुजी ने कहा, "शरीर तो पंचतत्वों से बना है, जब तुम्हारा यह शरीर पंचतत्वों में विलीन हो जाएगा, तभी तुम शुद्ध तथा निष्कलंक ही रहोगे, अब मुझे ये बताओ की तुम कौन हो?" उसपर वह ब्राह्मण बोला, "तब तो मैं निश्चित रूप से बुद्धि के साथ रहने वाला तथा अनेक लोकों में (भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वलोक, प्राजपत्य, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक ये जमीन के उपर स्थित सात लोक तथा महाकाल, अंबरीष, रौरव, कालसूत्र, अंधतामिस्त्र, अवीचि ये जमीन के नीचे स्थित सात लोक, कुल मिलाकर चौदा लोक हैं। मनुष्य के कर्मानुसार मृत्यु के बाद उसके प्राण इनमें से किसी भी लोक में जा सकता है।) संचार करनेवाला प्राण हूँ।" तब सतगुरुजी ने कहा, "निद्रा के समय बुद्धि लय होती है, तब तुम कौन होते हो?" ब्राह्मण ने कहा, "मैं नहीं जानता।" तब सिद्धारूढ़जी ने कहा, "तुम नहीं जानते यह तुम निश्चित रूप से जानते हो, परंतु उसके बारे में तुम एक शब्द भी नहीं बोल पा रहे हो, वह ज्ञानरूप तुम स्वयं ही हो।" ब्राह्मण ने कहा, "जिसने मुझे मेरे ज्ञानरूप की अनुभूति दिलाई ऐसे महात्मा के दर्शन मुझे जाहिर रूप से फलदायक हुए है।" ऐसा कहकर उसने सिद्धारूढ़जी के चरणों में मस्तक रखा। वहाँ से सिद्ध श्रीवरदराज के दर्शन करके निकले और संचार करते हुए चिदंबर क्षेत्र पहुँचे। वहाँ उन्होंने रहस्य स्थान देखा| वहाँ से निकलने के बाद वर्षा का जल उन्हें नहलाता और सूरज की किरणें उनका तन सुखाती, उसके लिए वे स्वयं कोई प्रयास नहीं करते थे। लोगों ने अर्पण किए हुए अन्न से ही वह पेट भरकर देह रक्षण करते, वर्ना शरीर की चिंता करना जैसे वह जानते ही नहीं थे। अगर कोई उनकी पूजा करता या उन्हें मारता, तब भी वह सबसे समदृष्टि से ही बर्ताव करते। कुंभकोण

क्षेत्र में कुंभेश्वर, तंजावर में तंजेश्वर के दर्शन करने के पश्चात वे श्रीरंगनाथजी के दर्शन हेतु श्रीरंग क्षेत्र पहुँचे। मार्ग में एक किसान ने उन्हें पूछा, "निश्चित रूप से तुम एक मृत शरीर के समान दिख रहे हो, परंतु वायु की गति से भाग रहे हो। अगर तुम हृष्टपुष्ट होते तो न जाने किस गति से दौड़ते!" उसपर सिद्ध ने कहा, "ज्यादा अन्न सेवन करने से शक्ति प्राप्त नहीं होती। उसके लिए मनुष्य की मन की वृत्ति सदा ही ब्रह्मरूप होनी चाहिए।" श्रीरंगनाथजी के दर्शन करके वे जंबुकेश्वर आए और वहाँ से वे देवी मीनाक्षी के दर्शन हेतु मदुराई क्षेत्र पहुँचे।

वहाँ मंदिर में प्रवेश करते ही एक ब्राह्मण ने उन्हें कहा, "तुम तो पूर्णरूप से एक चांडाल लग रहे हो, इसलिए तुम मंदिर में प्रवेश मत करो।" ऐसा कहते हुए वह सिद्धारूढ़जी को मंदिर में प्रवेश करने से रोकने लगा। सिद्ध ने कहा,"फिलहाल, तुझमें क्रोधरूपी चांडाल प्रवेश कर चुका है। जब तुम दूसरों से पैसे ऐंठते हो, तब तुझमें आशा का चांडाल ने प्रवेश किया रहता है। जब निराश होते हो, तब और कोई चांडाल तुझमें प्रवेश करता है। इस प्रकार तुम्हारे साथ तीनों चांडाल एकसाथ ही निकल पड़े हैं।" उनकी बातका कोई उत्तर न सुझने के कारण वह ब्राह्मण गड़बड़ा गया और बोला, "तुम्हारे साथ बात करते समय मैं अपने कर्म का आचरण तक भूल गया हूँ," उसपर सिद्ध ने कहा, "इसका अर्थ यह हुआ की तुम्हारे शरीर में इस समय कर्मभ्रष्ट चांडाल प्रवेश करेगा।" यह सुनकर वह ब्राह्मण पश्चातापयुक्त होकर बोला, "मेरी रक्षा कीजिए" और उनके चरणों में गिर गया, तत्पश्चात वह अपने घर चला गया। बाद में सिद्धारूढ़जी मंदिर में प्रविष्ट हुए और उन्होंने देवी मीनाक्षी की पूजा देखी। वहाँ से वे कावेरी नदी किनारे गए और शांति से आसन लगाकर वही बैठ गए। घर पहुँचते ही उस ब्राह्मण को सिद्धारूढ़जी का स्मरण हुआ और उसने मन ही मन कहा उस महात्मा को घर आमंत्रित करके भोजन कराए। ब्राह्मण उन्हें खोजने के चल पड़ा। नदी किनारे आकर देखता है तो उसने देखा की अवधूत वहाँ शांत भाव से बैठे हुए पाया। उसने विनति की, "हे साधु महाराज, आज आप मेरे घर भोजन के लिए पधारे।" जब ब्राह्मण ने उनसे अति आदरपूर्वक विनती की तब सिद्धारूढ़जी ने कहा, "अगर तुम्हारे घर तक तुम हमें चलाते हुए ले जाओगे तब

तुम्हें थोड़ा सा ही पुण्य प्राप्त होगा, परंतु तुम यही भोजन लाकर हमें अर्पण करोगे तो तुम्हें दस गुना ज्यादा पुण्य़ प्राप्ति होगी।" हँसमुख चेहरे से किया हुआ महात्मा का यह भाषण सुनकर ब्राह्मण घर लौटा और जल्द ही नैवेद्य लेकर फिर आ गया। सिद्धनाथजी ने वह मिष्टान्न सेवन किया, उस ब्राह्मण को घर भेज दिया और उसी जगह ब्रह्मानंद में लीन रहकर शयन किया। आगे चलते हुए रामेश्वरजी के दर्शन करके लौटते समय रामझरोके में एक योगीश्वर को देखकर उसे पूछा, "आपका कौनसा अंग सफल हुआ?" उसने कहा, "आसन का एकमात्र अंग है, यह मुझे शरीर के स्वास्थ्य तथा सुडौलपन से समझ में आया।" यह सुनकर सिद्ध संतुष्ट हुए| वहाँ से धनुष्कोटी जाते समय स्नान करने वाले एक व्यक्ति से उन्हों ने पूछा, "शरीर साफ है यह जानकर स्नान कर रहे हो या गंदा है इसलिए स्नान कर रहे हो?" उसने कहा, "यह शरीर निश्चित रूपसे गंदा है।" सिद्ध ने पूछा, "तुम्हे यह कैसे पता चला?" उसने कहा, "जन्म होने के पश्चात मुखपर किये गए धार्मिक संस्कारों से मैंने यह जान लिया है।" तब वह मूर्ख है यह जानकर सिद्धयति आगे चल पड़े। वहाँ से तिरुनेल्वेल्ली जाकर उन्होंने तिर्नलस्वामीजी के दर्शन किये। वहाँ ध्यान लगाकर बैठे हुए एक मनुष्य से उन्होंने पूछा, "आप जो उपासना कर रहे हैं, वह आपको पूर्णरूप से ज्ञात है या अज्ञात है? क्योंकि ज्ञात उपासना में व्दैत भाव नहीं रहता। जिसका हमें चिंतन करना है (ध्यात) तथा लक्ष्य (मोक्ष) ये दोनों भी एक ही हो जाने के कारण, ऐसे समय ध्यान कैसे हो पाएगा? अगर तुम कहोगे की तुम्हारी उपासना अज्ञात है, तब कोई ध्याता (ध्यान करनेवाला) चिंतन करने वाली वस्तु के बारे में कुछ भी जानकारी न होते हुए, कैसे ध्यान कर सकता है?" उसने कहा, "बुद्धि की समझ में आनेवाले ज्ञान से भिन्न ऐसा यह ज्ञान प्राप्त करने हेतु मैं शास्त्रीजी की सहायता से ध्यान करता रहता हूँ। क्योंकि उसके लिए अडिग श्रद्धा ही कारण है।" उसपर सिद्ध ने कहा, "किसलिए?" उसने कहा, "शास्त्रों में निपुण हुए मनुष्यों की देवताओं पर श्रद्धा न होने के कारण उन्हें ध्यान करते नहीं बनता। परंतु एक उपासक के लिए श्रद्धा ही प्रमुख होती है, इसीलिए मैं इस प्रकार की उपासना करता हूँ।" वह रूढ़िवादी है ऐसा समझकर सिद्धारूढ़जी वहाँ से चल पडे। वहाँ से तोताद्री क्षेत्र जाकर उन्होंने श्रीनारायणमूर्ति के दर्शन किए और

वहाँ से वे आगे निकल पड़े। आगे चलकर उन्होंने तिरकरम मंदिर में जाकर लंची नारायणजी के दर्शन किए और वहाँ वे नौ दिन रहे। वहाँ एक शास्त्री ने उनसे पूछा, "आप स्नानादि कर्म क्यों नहीं करते?" उसपर सिद्ध ने कहा, "कर्म करने से जो संस्कार होते हैं, उन कर्मसंस्कारों से बुद्धि पर इस लोक तथा परलोक में भी बंधन आता है| शास्त्रोक्त प्रणाली के अनुसार कर्माचरण करने से जीवात्मा को उत्तम लोक की प्राप्ति होती है, परंतु पुण्य संचय के समाप्त होते ही, जीवात्मा फिर एक बार इस मृत्यु लोक कर्म करने हेतु वापस आती है। इस प्रकार जब कई जन्म-मृत्यु के फेरे लेने के पश्चात जीवात्मा तंग आ जाती है और कर्म का त्याग कर देती है, तब उसकी कर्मबंधन से निवृत्ति होती है। परंतु जबतक जीवात्मा कर्म से ऊब नहीं जाती, तबतक उसे वेदश्रुति कर्माचरण करने का आदेश देते हैं। जब वैराग्य की भावना बुद्धि में जागृत होती है तभी श्रुति उसे कर्माचरण से निवृत्ति पाने का मार्ग दिखाती है।" सिद्धारूढ़जी ने मुमुक्षू दशा में ही कर्माचरण त्याग देने के कारण, उनके सामने यह प्रश्न उत्पन्न ही नहीं हुआ। सिद्धारूढ़जी का कथन सुनकर शास्त्री ने उन्हें दीन भाव से प्रणाम किया। इस प्रकार जहाँ जहाँ भी सिद्ध गए, वहाँ वहाँ उन्होंने लोगों को वेदांत मार्ग के बारे में बोधित किया कि, "सतगुरुनाथजी से मुलाकात होने के पश्चात जीवात्मा कर्मबंधन से मुक्त होती है। जीवात्मा को आसक्ति तथा मनोकामनाओं का नाश होने का तथा दुखरहित होने का उत्तम मार्ग सतगुरुनाथ ही दिखाते है।" अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह पाँचवा अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणोंमें अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढचरणारविंदार्पणमस्तु ॥